भारतीय विविधता के बारे में सोच समझकर बात की जानी चाहिए

हाल ही में कांग्रेस के नेता सैम पित्रोदा ने कहा है कि 'पूर्वी भारत के लोग चीनी और दक्षिण भारतीय अफ्रीकीयों की तरह लगते हैं'। उनकी यह बात कोई नई नही है। लेकिन भारत की विविधता के बारे में बात करने का उनका यह तरीका बेतुका है।

इंसान अपनी आनुवांशिक वंशावली को अफ्रीका से जोड़ते हैं। वंशावली एक होते हुए भी हम भिन्न-भिन्न दिखते हैं। दरअसल, हमारा देश कई जातीय समूहों, भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों का एक संघ है, जो बसावट और बातचीत के मेलजोल से पैदा हुआ है। इसलिए, विशेषताओं और त्वचा के रंग में क्षेत्रीय भिन्नताओं का होना स्वभाविक है।

यदि इससे जुड़ी समस्या की बात करें, तो यह विविधता से नहीं, बल्कि पदानुक्रम (हायरारकी) से आती है। भारत परतों में व्यवस्थित समाज है। काली त्वचा का गुणगान कविता, गीत और महाकाव्यों में भले ही किया जाता हो, लेकिन हममें से कई लोगों के लिए यह एक संवेदनशील मामला है। हमारी उपस्थिति को जाति और उपनिवेशवाद से रंगे हुए लेंस के माध्यम से आंका जाता है।

कई भारतीय अभी भी अपनी जड़ों से अलग सौंदर्य के मानदंड़ों को पूरा करने के लिए संघर्ष करते हैं। इसे देखते हुए भारतीयों की अफ्रीकी और चीनी की तरह दिखने वाली टिप्पणी आहत करने वाली हो सकती है। दरअसल, शब्द अपने आप में समस्या नहीं हैं, बल्कि उनका जुड़ाव जिस संदर्भ में हो रहा है, वह समस्या है। सैम पित्रोदा ने यही तुलना अगर पश्चिमी

देशों के गोरे लोगों से की होती, तो यह उतनी बुरी नहीं लगती, क्योंकि वहाँ उनकी सामाजिक शक्ति सौंदर्य के मानक तय करती है।

अगर किसी को जातीय विविधता के बारे में बात करनी ही है, तो वह नागरिक सम्मान और समावेश के आधार पर बात करे। त्वचा के रंग, विशेषताओं, विकलांगता, जाति या क्षेत्र के आधार पर मानदंड बनाकर लोगों को नीचा न दिखाया जाए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित संपादकीय पर आधारित। 10 मई, 2024